बालमनोरमा
भ्रान्ति
दिग्दर्शन



वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A.
साहित्यरत्न

* ओ३म् *

श्रीमद्रामचन्द्रग्रन्थमाला—

(चतुर्थप्रसून)

बालमनोरमा - भ्रान्ति - दिग्दर्शन

(BALMANORAMA-BHRANTI-DIGDARSHANA)

सिद्धान्तकौमुदी की प्रसिद्ध टीका 'बालमनोरमा'
की भ्रान्तियों को दर्शाने वाला
शोधपूर्ण निबन्ध

लेखक—
'लघुसिद्धान्तकौमुदी' की सुप्रसिद्ध भैमीव्याख्या (तीन भाग)
तथा 'वैयाकरणभूषणसार' के विख्यात
भैमीभाष्य के निर्माता

वैद्य भीमसेन शास्त्री *M. A.*
साहित्यरत्न

प्राप्तिस्थान—
५३७, लाजपतराय मार्केट
(दीवानहाल के सामने)
दिल्ली-६

प्रकाशक :

वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A.

साहित्यरत्न

537, लाजपतराय मार्केट

दिल्ली-6

प्रथम संस्करण : 1972

वैद्य भीमसेन शास्त्री, दिल्ली

बालमनोरमाभ्रान्तिदिग्दर्शन

मूल्य—पांच रुपये केवल

मुद्रक :—

राधा प्रेस,

गांधी नगर,

दिल्ली-३१

बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन

सैंकड़ों वर्षों से पाणिनीयव्याकरण दो धाराओं में विभक्त हो कर चला आ रहा है। एक धारा है **सूत्रक्रमानुसारी** और दूसरी है **प्रक्रियाक्रमानुसारी**। महाभाष्य, काशिका, न्यास, पदमञ्जरी, भागवृत्ति, भाषावृत्ति, मिताक्षरा, शब्दकौस्तुभ, व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि आदि सूत्रक्रमानुसारी ग्रन्थ हैं। रूपावतार, रूपमाला, माधवीयधातुवृत्ति, प्रक्रियाकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, प्रक्रिया-सर्वस्व, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी, शेखर, वेदाङ्गप्रकाश आदि प्रक्रियाक्रमानुसारी ग्रन्थ हैं[1]। इस में सन्देह नहीं कि सूत्रक्रम के पूर्णविकास के बाद ही आधुनिक प्रक्रियाक्रम का धीरे धीरे विकास हुआ है। प्रक्रियाक्रम में समय समय पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये और उत्तरोत्तर विकसित होते गये। सत्रहवीं शती में श्रीभट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी के निर्माण के साथ इस क्रम का पूर्ण विकसित रूप जनता के सामने आया। गत तीन सौ वर्षों से सिद्धान्तकौमुदी ही प्रक्रियामार्ग का प्रायः सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ समझा जाता रहा है। इस के सामने अन्य सब पिछले प्रक्रियाग्रन्थ टिक नहीं सके अतः उन सब का प्रचार पठन-पाठन से जाता रहा। सिद्धान्तकौमुदी पर गत तीन सौ वर्षों में विविध टीकाएं लिखी जा चुकी हैं। जिन में २५ से अधिक टीकाएं इस समय ज्ञात हैं। परन्तु जिस प्रकार सिद्धान्तकौमुदी प्रक्रियामार्ग में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई है उसी प्रकार इस पर लिखी जाने वाली सब टीकाओं में अठारहवीं शती के उत्तरार्धवर्ती **श्रीवासुदेवदीक्षित** द्वारा लिखी **बालमनोरमाटीका** भी छात्रोपयोगी टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। पिछले पचास वर्षों में इस टीका के अनेक संस्करण देश के मूर्धन्य विद्वानों के सम्पादकत्व में निकल चुके हैं। अब अवस्था

---

१. ये दोनों धाराएं एक दूसरे की विरोधी न होकर पूरक ही हैं। यही कारण है कि प्रथमधारा के प्रबल समर्थक श्रीस्वामिविरजानन्दसरस्वती के शिष्य **श्रीस्वामिदयानन्दसरस्वती** को वेदाङ्गप्रकाश लिखना पड़ा और दूसरी धारा को पराकाष्ठा तक ले जाने वाले **श्रीभट्टोजिदीक्षित** को शब्दकौस्तुभ लिखना पड़ा।

यहाँ तक आ पहुँची है कि इस टीका के विना सिद्धान्तकौमुदी का कोई संस्करण बाजार में आसानी से बिकता भी नहीं है। अतः प्रत्येक प्रकाशक बालमनोरमा के साथ ही सिद्धान्तकौमुदी को छापना पसन्द करता है। अब तक बालमनोरमाटीका के निम्नलिखित प्रसिद्ध २ संस्करण निकल चुके हैं—

(१) **मद्राससंस्करण :** यह संस्करण **श्री शं० चन्द्रशेखरशास्त्री** के सम्पादकत्व में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ।

(२) **लवपुरसंस्करण :** यह संस्करण महामहोपाध्याय व्याकरणाचार्य **श्रीमाधवभाण्डारी शास्त्री** के सम्पादकत्व में बड़ी सजधज से प्रकाशित हुआ।

(३) **लवपुरसंस्करण :** यह संस्करण बालमनोरमा और तत्त्वबोधिनी टीका सहित महामहोपाध्याय **श्री पं० गिरिधरशर्मचतुर्वेद** और महामहोपाध्याय **श्री पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री** के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ।

(४) **काशीसंस्करण :** यह संस्करण **श्री पं० गुरुप्रसादशास्त्री** के सम्पादकत्व में तत्त्वबोधिनी-बालमनोरमा-शेखर तीन व्याख्याओं के साथ प्रकाशित हुआ।

(५) **चौखम्बासंस्करण :** यह संस्करण **श्री पं० गोपालशास्त्रिनेने** और **श्री पं० जोशीसदाशिवशास्त्री** के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ।

परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि भारत में सम्पादनकला ने अभी वह उच्च स्थान प्राप्त नहीं किया जो इसे पाश्चात्य जगत् में प्राप्त हुआ है। भारत में अनेक सम्पादक केवल नाममात्र के सम्पादक होते हैं। कभी कभी तो ग्रन्थ-प्रकाशन के बाद ही उन को पता चलता है कि वे इस ग्रन्थ के सम्पादक व संशोधक रहे हैं। कई सम्पादक ग्रन्थ को आमूलचूक स्वयं पढ़ते तक नहीं और ग्रन्थ के सम्पादक व संशोधक बन जाते हैं। कई बार अर्थलोलुप प्रकाशक भी बड़े २ लेखकों की स्वीकृति व अर्धस्वीकृति लेकर केवल उन का नाम प्रकाशित कर देते हैं। वर्त्तमान में उपर्युक्त बालमनोरमा के संस्करणों की भी कुछ ऐसी ही अवस्था प्रतीत होती है। उपर्युक्त स्वनामधन्य सम्पादकों में से शायद किसी ने भी सूक्ष्मरीत्या इस टीका का मन्थन नहीं किया; जैसे दूसरे स्थानों से ग्रन्थ छपा वैसे अन्धानुकरण कर ग्रन्थ छापते चले गये। यही कारण है कि इस ग्रन्थ में आज सैंकड़ों हास्यास्पद घिनौनी अशुद्धियां दिखाई देती हैं जो पठन-पाठन के समय विद्यार्थियों और अध्यापकों को शूल की तरह चुभती

हैं। मैंने इस लघुलेख में उन अशुद्धियों का कुछ दिग्दर्शन प्रस्तुत किया है। **मेरा उद्देश्य छात्रों में लब्धप्रतिष्ठ बालमनोरमाकार श्रीवासुदेवदीक्षितजी के यश को कलंकित करना नहीं और न ही अपने को कोई बड़ा पण्डित सिद्ध करना है (और न ही मैं हूँ)। मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है कि बालमनोरमा के भाविसम्पादक इस सुन्दर टीका का अच्छी तरह मन्थन कर इस का सुसम्पादन करें।** जहां २ भद्दी अशुद्धियां हों वहां वहां फुटनोट देकर उनका परिमार्जन करें। पाश्चात्य सम्पादकीयकला का आश्रय ले कर कोई भारतीय विद्वान् इस ग्रन्थ का सुसम्पादन करे—इतना मात्र मुझे अभीष्ट है।

यहां बालमनोरमाकार की भ्रान्तियों का दिग्दर्शन कराने के लिये केवल कुछ चुने हुए स्थलों की ही समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है—

(१) सिद्धान्तकौमुदी के अजन्तपुंलिङ्ग प्रकरण में **'ऋत उत्'** (६.१.१११) सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"ऋत उत्। 'अङ्गस्य' इत्यधिकृतम्।
ऋत इत्यनेन विशेष्यते। ततस्तदन्तविधिः।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण पूर्वार्ध पृष्ठ १४३)[१]

अर्थात् इस सूत्र में पीछे से **'अङ्गस्य'** का अधिकार आ रहा है। 'ऋतः' को 'अङ्गस्य' का विशेषण बना कर तदन्तविधि करने से **'ऋदन्तस्य अङ्गस्य'** बन जाता है।

समीक्षा—अष्टाध्यायी में **'अङ्गस्य'** (६.४.१) सूत्र का अधिकार छठे अध्याय के चतुर्थपाद से आरम्भ होता है परन्तु प्रस्तुत **'ऋत उत्'** (६.१.१११) सूत्र छठे अध्याय के प्रथम पाद के अन्तर्गत है। अतः यहां पर 'अङ्गस्य' के अधिकार की अनुवृत्ति कथमपि सम्भव नहीं। जब 'अङ्गस्य' का अनुवर्त्तन ही

---

१. यह उद्धरण केवल श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसम्पादित संस्करण में ही नहीं अपितु बालमनोरमा के सब मुद्रित संस्करणों में एक समान प्राप्त है। इसी प्रकार आगे के उद्धरणों के विषय में भी समझ लेना चाहिये। हमने यहां श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण केवल सुविधा के लिये ही निर्दिष्ट किया है उन के अपवाद के लिये नहीं, अतः इसे निदर्शनार्थ ही समझना चाहिये।

नहीं हो रहा तो पुनः तदन्तविधि कैसी ? एक बात यहां और भी द्रष्टव्य है कि तदन्तविधि करने से लाभ भी क्या है ? क्या जैसे **'ङसिङसोश्च'** (६.१.१०८)[1] सूत्र में तदन्तविधि के विना काम चल जाता है वैसे यहां नहीं चल सकता ?[2] इतने पर भी यदि तदन्तविधि करने का आग्रह ही हो तो पिछले **'एङः पदान्तादति'** (६.१.१०७) सूत्र से 'अन्त' ग्रहण का अनुवर्त्तन कर वह भी सम्पादित किया जा सकता है। अतः यहां ऊटपटांग कल्पना की आवश्यकता नहीं।

(२) सिद्धान्तकौमुदी के हल्सन्धिप्रकरण में **'यवलपरे यवला वा'** इस वार्त्तिक की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"यवलपरे इति। यवलाः परा यस्मादिति विग्रहः। यवलपरके हकारे परे मस्य म एव स्यादित्यर्थः।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, पूर्वार्ध पृष्ठ ६८)

अर्थात् यकार, वकार अथवा लकार परे वाले हकार के परे होने पर मकार को मकार ही हो।

समीक्षा—इस वार्त्तिक में मकार को मकार करने का विधान नहीं अपितु य् व् ल् करने का विधान है। श्रीबालमनोरमाकार सम्भवतः इस से पूर्व **'हे मपरे वा'** (८.३.२६)[3] सूत्र के अर्थ के कारण भ्रान्त हो गये हैं। मान्य सम्पादकों को व्याख्या की इस त्रुटि की ओर टिप्पण में निर्देश करना चाहिये था।

(३) सिद्धान्तकौमुदी के अजन्तपुंलिङ्गप्रकरण में **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८.४.२) सूत्र में नुम् से अनुस्वार का ग्रहण अभीष्ट है—इस की व्याख्या करते हुए पूर्वपीठिका उठाने के लिए श्रीबालमनोरमाकार इस प्रकार लिखते हैं—

---

१. एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्—सि० कौ०।

२. ध्यान रहे कि लघुकौमुदी में श्रीवरदराज ने तदन्तविधि का कुछ भी उपयोग न समझते हुए इसे वृत्ति में से हटा दिया है। ऋतो ङसिङसोरति उद् एकादेशः—(ल० कौ०)।

३. मपरे हकारे परे मस्य म एव स्याद्वा (सि० कौ०)।

"इवि प्रीणने। ल्युट्। अनादेशः। इदित्त्वान्नुम्। प्रेन्वनम्। अत्र 'कुमति च' इति नुमा व्यवधानेऽपि णत्वं स्यात्।"
(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, पूर्वार्ध पृष्ठ ९८)

अर्थात् यदि नुम् से अनुस्वार का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'प्रेन्वनम्' में नुम् के व्यवधान में **'कुमति च'** (८.४.१३) सूत्र से णत्व प्राप्त होगा जो अनिष्ट है।

समीक्षा—'प्रेन्वनम्' में **'कुमति च'** (८.४.१३) सूत्र से कदापि णत्व प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति कवर्ग वाले उत्तरपद में ही हुआ करती है (जैसे—हरिकामिणौ, वस्त्रकामिणौ)। यहां 'प्रेन्वनम्' में कवर्ग का कहीं नामोनिशान भी नहीं देखा जाता। अतः यहां पर **'कुमति च'** के स्थान पर **'कृत्यचः'** (८.४.२९) सूत्र लिखा जाना उचित था[1]। प्रतीत होता है कि दोनों सूत्रों के ककारादित्व साम्य के कारण एक के स्थान पर भ्रान्तिवश दूसरा लिखा गया है। सम्पादक-महोदयों को इस का निराकरण नीचे टिप्पण में कर देना चाहिए था।

(४) सिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगणप्रकरण में **'धि च'** (८.२.२५) सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"सः स्यार्धधातुके इत्यतः स इत्यनुवर्त्तते। तासस्त्योरित्यतो लोप इति। अङ्गाक्षिप्त-प्रत्ययो धीत्यनेन विशेष्यते। तदादिविधिः।"
(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ४३)

---

१. **भट्टोजिदीक्षित** के मतानुसार 'प्रेन्वनम्' में सर्वप्रथम नुम् के नकार को **'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च'** (८.४.११) सूत्रद्वारा णत्व प्राप्त होता है इस का क्षुभ्नादित्वात् निषेध कर दिया जाता है। इस के बाद दूसरी बार ल्युडादेश अन के नकार को **'कृत्यचः'** (८.४.२९) से णत्व प्राप्त होता है परन्तु व्यवधान में अवाञ्छित वर्ण नकार के आ जाने से वह हो नहीं सकता। ध्यान रहे कि **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८.४.२) सूत्र में नुम् से अनुस्वार का ग्रहण अभीष्ट है। अतः नकार अवाञ्छित वर्ण है।

श्रीनागेशभट्ट का कहना है कि जब 'प्रेन्वनम्' आदि को क्षुभ्नादिगण में रखना ही है तो दोनों नकारों का णत्वनिषेध एक ही विधि अर्थात् क्षुभ्नादित्वादेव क्यों न कर लिया जाये। श्रीनागेश के ये विचार **लघुशब्देन्दुशेखर** में **'प्रातिपदिकान्त०'** सूत्र पर देखे जा सकते हैं।

अर्थात् **'धि च'** (८.२.२५) सूत्र में **'सः स्यार्धधातुके'** (७.४.४९) से 'सः' पद की तथा **'तासस्त्योर्लोपः'** (७.४.५०) सूत्र से 'लोपः' पद की अनुवृत्ति आती है। अङ्गाधिकार के कारण 'प्रत्यये' का आक्षेप कर लिया जाता है और तब तदादिविधि करने से **'धादौ प्रत्यये'** उपलब्ध हो जाता है।

समीक्षा—प्रक्रियाक्रम में अष्टाध्यायीसूत्रपाठ का अभ्यास न रहने से इस प्रकार की अनर्गल कल्पनाएँ हुआ ही करती हैं। बालमनोरमाकार सम्भवतः **'धि च'** सूत्र को अङ्गाधिकारान्तर्गत सप्तमाध्याय के चतुर्थपाद का समझ रहे हैं। यह सूत्र अङ्गाधिकारस्थ न हो कर अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद का है। कोई भी व्यक्ति अष्टाध्यायी खोल कर उनकी भ्रान्ति समझ सकता है। **'अङ्गस्य'** का अधिकार सप्तमाध्याय के चतुर्थपाद के अन्त तक जाता है इस से आगे नहीं—यह निर्विवाद है। इसी प्रकार उनकी अनुवृत्तियों की व्याख्या भी नितान्त अशुद्ध है। 'सः' पद की अनुवृत्ति यहां से दो पाद पूर्व **'सः स्यार्धधातुके'** (७.४.४९) से लाने की क्या आवश्यकता है जबकि इससे पिछले सूत्र **'रात्सस्य'** (८.२.२४) में ही 'सस्य' पद विद्यमान है। इसी प्रकार 'लोपः' पद की अनुवृत्ति के लिये लगभग डेढ़ सौ सूत्र पूर्व सप्तमाध्यायस्थ **'तासस्त्योर्लोपः'** (७.४.५०) सूत्र तक भागने की भी आवश्यकता नहीं, इस से दो सूत्र पूर्व ही **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८.२.२३) सूत्र से वह पद प्राप्त हो सकता है। ऐसी निर्विवाद अशुद्धियों पर भी सम्पादकाचार्यों का मौन आश्चर्य के साथ कुछ कुतूहल भी उत्पन्न करता है[1]। इस स्थल की विशेष व्याख्या लघुसिद्धान्तकौमुदी की हमारी **भैमीव्याख्या (द्वितीयभाग पृ० २१६)** में देखें।

(५) सिद्धान्तकौमुदी के अजन्तपुंलिङ्गप्रकरण में **'न भूसुधियोः'** (६.४.८५) सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"इको यणचीत्यतोऽचीति चानुवर्त्तते।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, पूर्वार्ध पृष्ठ १३९)

अर्थात् यहां पर **'इको यणचि'** सूत्र से 'अचि' पद की अनुवृत्ति होती है।

समीक्षा—अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ के अभ्यास न करने का यह दूसरा

---

१. कलकत्ता के **श्रीकुमुदरञ्जन भिषगाचार्य** ने सिद्धान्तकौमुदी की अपनी अंग्रेजी टीका में यहाँ पर बालमनोरमा के इन अनुवृत्तिनिर्देशों का अन्धानुकरण कर अपनी अज्ञता ही प्रकट की है।

बड़ा उदाहरण हैं। प्रतीत होता है कि श्रीबालमनोरमाकार छठे अध्याय के चतुर्थपादान्तर्गत इस सूत्र को छठे अध्याय के प्रथमपादान्तर्गत समझ कर व्याख्या कर रहे हैं। षष्ठाध्याय के प्रथमपाद में **'इको यणचि'** (६.१.७६) सूत्र के 'अचि' पद की अनुवृत्ति पर्याप्त दूर (लगभग पचपन सूत्रों) तक जाती है। व्याख्याकार ने इस सूत्र को भी इसी प्रकरण का समझ लिया। यह सूत्र यहां का न होकर षाष्ठचतुर्थपाद का है। चतुर्थ पाद के इस प्रकरण में **'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ'** (६.४.७७) सूत्र से 'अचि' पद का अनुवर्त्तन सर्वविदित और सर्वसम्मत है।

(६) सिद्धान्तकौमुदी की भावकर्मप्रक्रिया में **'बुभूषिता, बुभूषिष्यते'** रूपों की सिद्धि समझाते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"चिण्वदिड्भावपक्षेऽपि तददतिदेशेन प्राप्तां
वृद्धिं बाधित्वा परत्वाद् अतो लोपः।"
(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ३४५)

अर्थात् जिस पक्ष में चिण्वदिट् होगा उस पक्ष में चिण्वद्भाव के द्वारा णित्त्व अतिदेश के कारण प्राप्त हुई वृद्धि को परत्व के कारण **'अतो लोपः'** (६.४.४८) सूत्र बाध कर प्रवृत्त हो जायेगा।

समीक्षा—श्रीबालमनोरमाकार का आशय यह है कि चिण्वद्भाव के कारण णित्त्व अतिदेश होने से **'अचो ञ्णिति'** (७.२.११५) से जो वृद्धि प्राप्त होगी उस का परत्व के कारण **'अतो लोपः'** (६.४.४८) सूत्र बाध कर लेगा। अब यहां हमें यह देखना है कि **'अचो ञ्णिति'** (७.२.११५) और **'अतो लोपः'** (६.४.४८) सूत्रों में से अष्टाध्यायी में कौन सा सूत्र पर है? अष्टाध्यायीसूत्रपाठ में बिल्कुल स्पष्ट है कि **'अतो लोपः'** (६.४.४८) सूत्र पहले पढ़ा गया है और **'अचो ञ्णिति'** (७.२.११५) सूत्र बाद में। बालमनोरमाकार ने भ्रान्तिवश पूर्वसूत्र को पर और परसूत्र को पूर्वसूत्र समझ लिया है।[1] अष्टाध्यायी सूत्रपाठ के अनभ्यास का ही यह फल है। यहां पर

---

१. वस्तुतः 'बुभूषिता, बुभूषिष्यते' इत्यादि स्थलों पर चिण्वदिट्पक्ष में परत्व के कारण वृद्धि प्राप्त होती है, परन्तु **'ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन'** इस वार्त्तिक से उस का बाध होकर पूर्वविप्रतिषेध से **'अतो लोपः'** की प्रवृति हो जाती है।

मान्य सम्पादकों का मौन रहना और भी शोचनीय है।

(७) सिद्धान्तकौमुदी के अव्ययीभावसमास प्रकरण में **'परोक्ष'** शब्द की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"अक्ष्णः परमिति विग्रहे परमित्यस्य अक्षीत्यनेनाव्ययीभावसमासः। टच्, सुब्लुक्, परशब्दस्य ओकारान्तादेशः, पररूपम्। परोक्षाद्यथायथं सुप्, अम्भावः।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, पूर्वार्ध पृष्ठ ४१६)

अर्थात् पर और अक्षि शब्द का अव्ययीभावसमास होता है। टच् और सुब्लुक् होकर परशब्द के अन्त्य अकार को ओकार आदेश होकर पररूप हो जाता है।

समीक्षा—जब परशब्द के अन्त्य अकार को ओकार हो गया तो 'परो+अक्ष इस अवस्था में पररूप कैसा? पररूप हो जाये तो 'परक्ष' शब्द बनने लगे 'परोक्ष' नहीं। अतः यहां व्याख्या में प्रमादवश **'पूर्वरूपम्'** के स्थान पर **'पररूपम्'** लिखा गया है। ऐसी अशुद्धियां तो सम्पादक को सरलता से स्वयं ही शुद्ध कर लेनी चाहियें।

(८) सिद्धान्तकौमुदी के कृदन्तप्रकरण में **'हनश्च वधः'** (३.३.७६) सूत्र पर **'घातः'** उदाहरण की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"घात इति। हनस्तोऽचिण्णलोरिति तत्वम्। चजोरिति कुत्वम्।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण उत्तरार्ध पृष्ठ ५५६)

अर्थात् हन् धातु से घञ्प्रत्यय और उपधावृद्धि करने पर **'हनस्तोऽचिण्णलोः'** (७.३.३२) से नकार को तकार तथा **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७.३.५२) से हकार को कवर्गादेश (घकार) हो जाता है।

समीक्षा—यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७.३.५२)[1] सूत्र तो चकार जकार को ही कुत्व करता है परन्तु यहां चकार

१. चस्य जस्य च कुत्वं स्याद् घिति ण्यति च प्रत्यये परे—(सि० कौ०)

जकार का नाममात्र भी नहीं, तो भला इस सूत्र से कुत्व कैसे होगा ? वस्तुत: यहां श्रीबालमनोरमाकार को **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७.३.५४)[1] सूत्र लिखना चाहिये था क्योंकि उसकी प्रवृत्ति ञित् णित् में कही गई है और यहां घञ् प्रत्यय ञित् है ही ।

(९) सिद्धान्तकौमुदी की सन्नन्तप्रक्रिया में **'सुस्वूर्षति'** की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"सुस्वूर्षतीति । सनीवन्तेति इडभावे ऋकारस्य अज्झनेति दीर्घे कृते उत्त्वे रपरत्वे 'उपधायां च' इति दीर्घः ।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ २६२)

अर्थात् **'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्'** (७.२.४९) द्वारा जिस पक्ष में इट् नहीं होता वहां **'अज्झनगमां सनि'** (६.४.१६) से ऋकार को दीर्घ कर पुन: उत्त्व करने से **'उपधायां च'** (८.२.७८) से उपधादीर्घ हो जाता है ।

समीक्षा—'सुस्वुर् + स' यहां पर भला **'उपधायां च'** (८.२.७८)[2] सूत्र की प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ? क्या 'सुस्वुर्' में रेफ उपधा है ? प्रतीत होता है कि मानवसुलभ प्रमाद के कारण यहां **'हलि च'** (८.२.७७)[3] सूत्र लिखने की बजाय **'उपधायां च'** (८.२.७८) सूत्र लिखा गया है। सम्पादकों को इस अशुद्धि का परिमार्जन कर देना चाहिये था ।

(१०) सिद्धान्तकौमुदी के उणादिप्रकरण में **'स्फायितञ्चि०'** (उणा० १७०) सूत्र पर **'उस्र'** शब्द की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

---

१. ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात्—(सि० कौ०)

२. धातोरुपधाभूतयो रेफवकारयोर्हल्परयो: परत इको दीर्घ: स्यात्—(सि० कौ०)

३. रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घ: स्याद् हलि—(सि० कौ०)

"उस्र इति। वस्धातो रकि तस्य कित्त्वात् सम्प्रसारणेऽनेन षत्वनिषेधे च रूपम्। नन्वत्राऽनेन षत्वाभावकथनमसङ्गतम्, अस्य सूत्रस्य 'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः' इति प्राप्तस्य षत्वस्य निषेधकताया वृत्त्यादिषु उक्तत्वात्।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ४८३)

अर्थात् वस् धातु से रक् प्रत्यय करने पर रक् के कित्त्व के कारण सम्प्रसारण होकर **'शासिवसिघसीनां च'** (८.३.६०) से षत्व प्राप्त होता है। इस पर **'न रपर-सृपि-सृजि-स्पृशि-स्पृहि-सवनादीनाम्'** (८.३.११०) सूत्र से षत्व का निषेध होकर 'उस्रः' प्रयोग सिद्ध होता है। अब यहां बालमनोरमाकार पूर्वपक्ष उठाते हुए कहते हैं कि 'उस्रः' में उपर्युक्त **'न रपर०'** (८.३.११०) सूत्र से षत्वनिषेध नहीं हो सकता क्योंकि वृत्तिग्रन्थों में उस सूत्र को **'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः'** (८.४.३) द्वारा प्राप्त होने वाले षत्व का ही निषेधक माना गया है।

समीक्षा---यहां पर बालमनोरमाकार ने 'उस्रः' की सिद्धि तो ठीक की है। परन्तु पूर्वपक्ष उठाते हुए जो यह कहा है कि वृत्तिग्रन्थों में **'न रपर०'** सूत्र को **'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः'** द्वारा प्राप्त होने वाले षत्व का निषेधक कहा गया है—यह अशुद्ध है क्योंकि **'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः'** (८.४.३) सूत्र षत्व का विधान नहीं करता अपितु णत्व का विधान करता है। षत्व का विधान करने वाला सूत्र है—**पूर्वपदात्** (८.३.१०६)। बालमनोरमाकार ने भ्रमवश **'पूर्वपदात्'** और **'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः'** सूत्रों को एक मान लिया है। अष्टाध्यायी में ये दोनों सूत्र पृथक् पृथक् हैं और पृथक् पृथक् स्थानों पर पढ़े गये हैं। सम्पादकमहोदयों को यह अशुद्धि स्वतः ही दूर कर देनी चाहिये थी। हालांकि यहां मूल में ही श्रीभट्टोजिदीक्षित ने शुद्ध सूत्र दिया हुआ है।

(११) सिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगणप्रकरण में **'देङ् रक्षणे'** धातु की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"अदास्यदित्यपि ज्ञेयम्।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ १३४)

अर्थात् देङ् धातु का लृङ् में 'अदास्यत्' रूप समझना चाहिये।

समीक्षा—**'देङ् रक्षणे'** धातु ङित्त्व के कारण **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१.३.१२) से आत्मनेपदी है अतः लृङ् में इस का **'अदास्यत्'** रूप न होकर **'अदास्यत'** रूप बनेगा।

(१२) सिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगणप्रकरण में **'वह प्रापणे'** धातु के थल् में 'उवहिथ' रूप को सिद्ध करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"उवहिथेति। न शसददेति निषेधात्
'थलि च सेटि' न भवति।"
(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ १४४)

अर्थात् 'उवहिथ' में **'थलि च सेटि'** (६.४.१२१) से एत्त्वाभ्यासलोप प्राप्त होने पर **'न शसददवादिगुणानाम्'** (६.४.१२६) सूत्र से उस का निषेध हो जाता है।

समीक्षा—बालमनोरमाकार का उपर्युक्त सम्पूर्ण कथन ही अशुद्ध है। क्योंकि **'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि'** (६.४.१२०) तथा **'थलि च सेटि'** (६.४.१२१) दोनों सूत्रों की प्रवृत्ति केवल वहीं पर होती है जहां लिट् को मान कर आदि में कोई आदेश न हुआ हो। यहां तो लिट् को मान कर आदि में सम्प्रसारण स्पष्ट है अतः **'थलि च सेटि'** की प्राप्ति ही नहीं होती पुनः **'न शसददवादिगुणानाम्'** से निषेध कैसा?

(१३) सिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगणप्रकरण में **'वस निवासे'** धातु के थल् में **'उवसिथ'** रूप को सिद्ध करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"उवसिथ-उवस्थेति। न शसददेतिनिषेधात्
'थलि च सेटि' इति न भवति।"
(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ १४४)

अर्थात् 'उवसिथ' में **'थलि च सेटि'** (६.४.१२१) द्वारा एत्त्वाभ्यास-लोप प्राप्त होने पर **'न शसददवादिगुणानाम्'** (६.४.१२६) सूत्र से उस का निषेध हो जाता है।

समीक्षा—बालमनोरमाकार का यह कथन भी **१२** वें कथन की तरह दोषपूर्ण और भ्रमपूर्ण है।

(१४) सिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगण में **'घटादयः षितः'** इस गणसूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"द्युत दीप्तौ इत्यतः प्राग्घटादिसमाप्तिरिति वक्ष्यते।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ १०७)

अर्थात् **'द्युत दीप्तौ'** धातु से पहले २ घटादियों की समाप्ति आगे कहेंगे।

समीक्षा—**'द्युत दीप्तौ'** इस के स्थान पर यहां **'राजृ दीप्तौ'** पाठ होना चाहिये क्योंकि घटादियों का वृत्करण (समाप्ति) राजृ धातु से ही पहले किया गया है न कि द्युत् धातु से। द्युत् धातु तो घट् धातु से भी बहुत पहले धातु-पाठ में पढ़ी गई है अतः उस से पहले घटादियों का होना सम्भव ही नहीं है।

(१५) सिद्धान्तकौमुदी की भावकर्मप्रक्रिया में ण्यन्त भू धातु के **'भाविता'** प्रयोग को सिद्ध करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"भावितेति। ण्यन्ताद् 'भावि+ता' इति स्थिते परत्वाद् वलादिलक्षणमिटं बाधित्वा चिण्वदिटि तस्याऽभीयत्वेनाऽसिद्धत्वादनिटीति निषेधाऽभावाद् णिलोपे भावितेति रूपम्।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ३४४)

अर्थात् ण्यन्त भूधातु से 'भावि+ता' इस स्थिति में वलादिलक्षण इट् का बाध कर परत्व के कारण चिण्वदिट् हो जाता है। चिण्वदिट् आभीय होने से असिद्ध है अतः इट् परे न रहने से **'णेरनिटि'** (६.४.५१) द्वारा णि का लोप होकर 'भाविता' प्रयोग सिद्ध होता है।

समीक्षा—यहां पर वलादिलक्षण इट् अर्थात् **'आर्धधातुकस्येड् वलादेः'** (७.२.३५) को पूर्व तथा चिण्वदिट् अर्थात् **'स्यसिच्सीयुट्०'** (६.४.६२) को पर कार्य बताया गया है जो नितान्त अशुद्ध है। अष्टाध्यायी में इस से विपरीत पाया जाता है। अतः यहां **'परत्वात्'** की जगह **'नित्यत्वात्'** पाठ होना चाहिए। इसीलिए तो महाभाष्य की एक कारिका में कहा गया है—**"नित्यश्चायं वलिनिमित्तो विघाती।"** (विशेष जिज्ञासु इस प्रकरण के और अधिक स्पष्टीकरण के

लिये लघुसिद्धान्तकौमुदी की हमारी **भैमीव्याख्या द्वितीय भाग** पृष्ठ ६८६-६८७ का अवलोकन करें)।

(१६) सिद्धान्तकौमुदी के कृदन्तप्रकरण में **'प्रह्वायः'** रूप की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"प्रह्वाय इति। घञि वृद्ध्ययादेशौ।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ५५६)

अर्थात् वृद्धि और आय् आदेश करने से 'प्रह्वायः' रूप सिद्ध होता है।

समीक्षा—प्रपूर्वक ह्वेञ् धातु को **'आदेच उपदेशेऽशिति'** (६.१.४५) से आत्व, घञ् तथा **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७.३.३३) से युक् का आगम करने से 'प्रह्वायः' रूप सिद्ध होता है। आत्व का ध्यान न रहने से बालमनोरमाकार ने वृद्धि और आयादेश लिखा है अतः यह स्थल शोधनीय है।

(१७) सिद्धान्तकौमुदी के जुहोत्यादिगण में **'भस भर्त्सनदीप्त्योः'** धातु के लङ् में रूप दर्शाते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"अबभः, अबब्धाम्, अबप्सुः। अबभः, अबब्धम्, अबब्ध। अबप्सम्, अबप्स्व, अबप्स्म।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ १८५)

समीक्षा—यहां पर **'अबप्सम्'** रूप अशुद्ध है, क्योंकि अम् में हल् परे न रहने से **'घसि-भसोर्हलि च'** (६.४.१००) से उपधालोप सम्भव नहीं है। अतः शुद्ध रूप **'अबभसम्'** चाहिये।

(१८) सिद्धान्तकौमुदी के कृदन्तप्रकरण में **'मृजेर्विभाषा'** (७.२.११४) सूत्र पर **'मृज्यः'** रूप की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"मृज्य इति। कित्त्वान्न गुणः।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ३६०)

अर्थात् मृज् से क्यप् करने पर कित्त्व के कारण गुण नहीं होता।

समीक्षा—यहां पर **'कित्त्वान्न गुणः'** कथन अशुद्ध है। **'मृजेर्वृद्धिः'** (७.२.११४) द्वारा वृद्धि का प्रसङ्ग होने से **'कित्त्वान्न वृद्धिः'** ऐसा पाठ होना चाहिये।

(१९) सिद्धान्तकौमुदी के कृदन्त प्रकरण में **'सञ्ज्ञायां भृतृवृजि०'**

(३.२.४६) सूत्र पर **'शत्रुंसहः'** रूप की सिद्धि करते हुए श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"शत्रुंसह इति । शत्रून् सहते —विग्रहः । ह्रस्वादि पूर्ववत् ।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ ४१०)

अर्थात् 'शत्रुंसहः' रूप में ह्रस्वादि पूर्व की तरह कर लेने चाहियें ।

समीक्षा—'शत्रुंसहः' में कहीं ह्रस्व नहीं होता । यहां पर **'मुमादि पूर्ववत्'** पाठ होना चाहिये ।

(२०) सिद्धान्तकौमुदी की सन्नन्तप्रक्रिया में **'दुद्यूषति'** रूप की सिद्धि करते हुये श्रीबालमनोरमाकार लिखते हैं—

"दिव्धातोरुदाहरिष्यन्नाह—इडभाव इति । वस्येति । वकारस्येत्यर्थः । यणिति । दकारादिकारस्येत्यर्थः । द्वित्वमिति । द्यु इत्यस्येति शेषः ।"

(श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, उत्तरार्ध पृष्ठ २६१)

अर्थात् 'द्यु' को द्वित्व होकर 'दुद्यूषति' रूप सिद्ध होता है ।

समीक्षा—दिव् धातु से सन्, **सनीवन्तर्ध०** (७.२.४९) के इडभावपक्ष में **'हलन्ताच्च'** (१.२.१०) द्वारा कित्त्व के कारण लघूपधगुण का निषेध, **'छ्वोः शूडनुनासिके च'** (६.४.१९) से वकार को ऊठ् तथा तदनन्तर यण् करने पर **'द्यूस्'** को ही द्वित्व होगा न कि **'द्यु'** को ।

बालमनोरमाटीका के ये स्खलनस्थल निदर्शनार्थ प्रस्तुत किये गये हैं । इस प्रकार के और भी बहुत से स्थल इस टीका में विद्यमान हैं । इन स्थलों में से कुछ स्थल तो सम्पादक को विना किसी टिप्पणी के स्वयमेव शुद्ध कर लेने चाहियें (यथा— १०, ११, १४, १७, १९ आदि) । अन्यत्र जहां आवश्यक हो नीचे टिप्पण देकर संशोधन करना चाहिये । शुद्धपाठ प्रस्तुत करने में अनधिकारचेष्टा का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । यह तो सम्पादक का नैतिक कर्त्तव्य ही होता है ।

न मयाऽऽविष्कृता दोषाः पाण्डित्यमदलेशतः ।
सुधीः कोऽपि यतेतास्मिन्नेतदेव समीहितम् ।।
नव-पक्ष-नभो-नेत्रे वैक्रमे शुभवत्सरे ।
मयाऽकारि निबन्धोऽयं लघुरप्यर्थबृंहितः ।।

(२०२९ वैक्रमाब्द, सन् १९७२)



भैमी-साहित्य

[देश-विदेश के सैंकड़ों विद्वानों द्वारा प्रशंसित संस्कृतव्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् श्री वैद्य भीमसेन शास्त्री एम्०ए०पी०-एच्०डी०द्वारा लिखित उच्चकोटि के अनमोल संग्रहणीय व्याकरणग्रन्थों की सूची]

१९८४

---

१. लघुसिद्धान्तकौमुदी—भैमीव्याख्या (चार भाग)
२. वैयाकरणभूषणसार—भैमीभाष्योपेत
३. बालमनोरमाभ्रान्तिदिग्दर्शन
४. प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?
५. अव्यय-प्रकरणम् (भैमीव्याख्या)
६. न्यास पर्यालोचन (काशिका की व्याख्या न्यास पर शोधप्रबन्ध)

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या

[वैद्य भीमसेन शास्त्री एम्० ए०, पी०-एच्० डी० कृत विश्लेषणात्मक भैमीनामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित] प्रथम भाग

लेखक के दीर्घकालिक व्याकरणाध्यापन का यह निचोड़ है। कौमुदी पर इस प्रकार की विस्तृत वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक हिन्दी व्याख्या आज तक नहीं निकली। इस व्याख्या में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्तिवचन, समास-विग्रह, अनुवृत्ति, अधिकार, सूत्रगत तथा अनुवर्तित प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजन्य विशेषता, अर्थ की निष्पत्ति, उदाहरण प्रत्युदाहरण तथा विस्तृत सिद्धि देते हुए छात्रों और अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक शङ्का का पूर्ण विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस हिन्दी व्याख्या की देश-विदेश के डेढ़ सौ से अधिक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्थान-स्थान पर परिपठित विषय के आलोडन के लिये बड़े यत्न से पर्याप्त विस्तृत अभ्यास सङ्-गृहीत किये गये हैं। इस व्याख्या की रूपमालाओं में अनुवादोपयोगी लगभग दो हज़ार शब्दों का अर्थसहित बृहत्संग्रह प्रस्तुत करते हुए णत्वप्रक्रियोपयुक्त प्रत्येक शब्द को चिह्नित किया गया है। आज तक लघुकौमुदी की किसी भी व्याख्या में ऐसी विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। व्याख्या की सबसे बड़ी विशेषता अव्ययप्रकरण है। प्रत्येक अव्यय के अर्थ का विस्तृत विवेचन करके उसके लिये विशाल संस्कृत वाङ्मय से किसी न किसी सूक्ति वा प्रसिद्ध वचन को सङ्गृहीत करने का प्रयास किया गया है। अकेला अव्ययप्रकरण ही लगभग सौ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक विद्वान् समालोचक ने ग्रन्थ की समालोचना करते हुए यहां तक कहा था कि—**यदि लेखक ने अपने जीवन में अन्य कोई प्रणयन न कर केवल अव्यय-प्रकरण ही लिखा होता तो केवल यह प्रकरण ही उसे अमर करने में सर्वथा समर्थ था।** सन्धिप्रकरण में लगभग एक हज़ार अभूतपूर्व नये उदाहरण विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए संकलित किये गये हैं—उदाहरणार्थ अकेले **इको यणचि** सूत्र पर ५० नये उदाहरण दिये गये हैं। इस व्याख्या में ग्रन्थगत किसी भी शब्द की रूपमाला को **तद्वत्** नहीं लिखा गया प्रत्युत प्रत्येक शब्द एवं धातु की पूरी-पूरी सार्थ रूपमाला दी गई है। स्थान-स्थान पर समझाने के लिये नाना प्रकार के कोष्ठकों और चक्रों से यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। इस प्रकार का यत्न व्याकरण के किसी भी ग्रन्थ पर अद्ययावत् नहीं किया गया। यह व्याख्या छात्रों के लिये ही नहीं अपितु अध्यापकों तथा अनुसन्धान-प्रेमियों के लिए भी अतीव उपयोगी है। अन्त में अनुसंधानोप-योगी कई परिशिष्ट दिये गये हैं। यह ग्रन्थ भारत सरकार द्वारा सम्मानित हो चुका है। बृहदाकार २३ × ३६ ÷ १६ साइज के लगभग ६५० पृष्ठों में इस व्याख्या का केवल पूर्वार्ध भाग समाप्त हुआ है। संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण का मूल्य केवल एक सौ रुपया। सुन्दर बढ़िया सम्पूर्ण कपड़े की स्क्रीनप्रिंटिड जिल्द तथा पक्की अंग्रेज़ी सिलाई ने ग्रन्थ को बहुत आकर्षक बना दिया है।

पाण्डीचरीस्थित अरविन्दयोगाश्रम का प्रमुख त्रैमासिक पत्र **'अदिति'** इस व्याख्या के विषय में लिखता है—

"जहां तक हमें ज्ञात है यह आधुनिक शैली से विश्लेषणपूर्वक विषय का मर्म समझाने वाली अपने ढंग की पहली व्याख्या है। व्याख्याकार ने भाष्यशैली में आधुनिक व्याख्याशैली का पुट देकर सर्वाङ्ग सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। इस में मूल ग्रन्थ के एक-एक शब्द वा विचार को पूरा-पूरा खोल कर पाठकों के हृदय पर अंकित कर देने का सुन्दर यत्न किया गया है। विद्वान् व्याख्याकार ने लघुसिद्धान्त-कौमुदी की भैमी-नामक सर्वांगपूर्ण व्याख्या प्रकाशित कर के राष्ट्रभाषा की महान् सेवा की है। व्याकरण में प्रवेश के इच्छुक छात्र, व्युत्पन्न विद्यार्थी, जिज्ञासु, व्याकरणप्रेमी, अध्यापक और अन्वेषक सभी के लिये यह ग्रन्थरत्न एक-सा उपयोगी सिद्ध होगा।"

हिन्दी के प्रमुख मासिक पत्र 'सरस्वती' की सम्मति—

"लघुकौमुदी पर अब तक हिन्दी में कोई विश्लेषणात्मक व्याख्या नही निकली है। प्रस्तुत व्याख्या की लेखनशैली, क्लिष्ट स्थलों का विस्तृत उद्घाटन तथा सूत्रों की प्राञ्जल व्याख्या प्रत्येक संस्कृतप्रेमी पाठक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकेगी। पुस्तक न केवल विद्यार्थियों वरन् संस्कृत का अध्ययन करने वाले सभी लोगों के लिये संग्रहणीय है।"

उत्तर भारत का प्रमुख पत्र 'नवभारत टाइम्स' लिखता है—

"लेखक महोदय ने कई वर्षों के कठोर परिश्रम के पश्चात् यह ग्रन्थ तैयार किया है जो उपयोगी है। ग्रन्थकर्ता स्वयं विद्याव्यसनी हैं और विद्याप्रसार ही उनके जीवन की लगन है। हमें पूरी-पूरी आशा है कि आबाल-वृद्ध संस्कृत-प्रेमी इस ग्रन्थरत्न को अपनाकर परिश्रमी लेखक से इस प्रकार के अन्य भी अपूर्व ग्रन्थ प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।"

दिल्ली का प्रमुख हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' लिखता है—

"वैसे तो कौमुदी की अनेक हिन्दी टीकाएं निकल चुकी हैं; मगर इस व्याख्या की अपनी विशेषताएं हैं। इस में व्याकरण शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन के आधुनिक तरीकों का सहारा लिया गया है। सूत्रार्थ और अभ्यास इसी के उदाहरण हैं। लघु-कौमुदी में आये प्रत्येक सूत्र की अर्थविधि को जानने के बाद विद्यार्थी को वृत्ति घोटने की आवश्यकता न रहेगी। वह सूत्रार्थ समझ कर स्वयमेव उसकी वृत्ति तैयार करने योग्य हो सकेगा। लघुकौमुदी में आये प्रत्येक शब्द के रूप देकर टीकाकार ने शब्द-रूपावली का पृथक् रखना व्यर्थ कर दिया है। इसी सिलसिले में करीब दो हजार शब्दों की अर्थसहित सूची देकर टीकाकार ने इस विशेषता को चार चांद लगा दिये हैं। अव्यय प्रकरण इस पुस्तक की पांचवीं बड़ी विशेषता है—। यह हिन्दी टीका विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। एक बार अध्यापक से पढ़ने के बाद वे इस टीका के सहारे बड़े आराम से पुनरावृत्ति कर सकते हैं। उन्हें ट्यूटर रखने की आवश्यकता न रहेगी। यह टीका उनके लिये ट्यूटर का काम करेगी। आशा है कि संस्कृत व्याकरण का अध्यापन करने वाली संस्थाएं इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करेंगी।"

राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत, पदवाक्यप्रमाणज्ञ, स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, आचार्य पाणिनि महाविद्यालय काशी की सम्मति--

"मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेनशास्त्रिकृत भैमीव्याख्या सूक्ष्मरीत्या देखी है। काश! कि शास्त्रीजी ने ऐसी व्याख्या अष्टाध्यायी पर लिखी होती। परन्तु इतना मैं निःसन्देह कह सकता हूं कि इस प्रकार की विशद स्पष्ट और सर्वांगीण व्याख्या लघुकौमुदी पर पहली बार देखने को मिली है। इस व्याख्या में अष्टाध्यायी पद्धति का जो पदे-पदे मण्डन किया गया है उसे देख कर मुझे अपार हर्ष होता है।"

अनुसन्धानविद्यानिष्णात डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल की सम्मति—

"मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेनशास्त्री जी की विशद भैमीव्याख्या का अवलोकन किया। यह व्याख्या मुझे बहुत पसन्द आई। ऐसा स्तुत्य परिश्रम हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा ही सर्वप्रथम प्रकट हुआ है। यह व्याख्या कठिन से कठिन विषय को भी अत्यन्त सरलशैली से हृदयंगम कराने में सफल हो सकी है। प्रश्न-उत्तर, शङ्का-समाधान, सूत्रार्थ का स्फोरण करते समय स्थान-स्थान पर परिभाषाओं का उपयोग, अविकल रूपावलियां, सार्थ शब्दसंग्रह तथा परिश्रम से जुटाये गये अभ्यास आदि इस व्याख्या की अपनी विशेषताएं हैं। अव्ययप्रकरण का निखार प्रथम बार इस में देखने को मिला है। व्याकरण के ग्रन्थों पर इस प्रकार की व्याख्याएं निःसन्देह प्रशंसनीय हैं। यदि शास्त्री जी इस प्रकार की व्याख्या सिद्धान्त-कौमुदी पर भी लिखें तो छात्रों और अध्यापकों का बहुत उपकार होगा। मैं हृदय से इस ग्रन्थ के प्रचार एवं प्रसार की कामना करता हूं।"

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या

(द्वितीय भाग—तिङन्तप्रकरण)

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी के इस भाग में दस गण और एकादश प्रक्रियाओं की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तिङन्तप्रकरण व्याकरण की पृष्ठास्थि (Backbone) समझा जाता है। क्योंकि धातुओं से ही विविध शब्दों की सृष्टि हुआ करती है। अतः इस भाग की व्याख्या में विशेष श्रम किया गया है। लगभग दो सौ ग्रन्थों के आलोडन से इस भाग की निष्पत्ति हुई है। प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्तिवचन, समासविग्रह, अनुवृत्ति, अधिकार, प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजन्य वैशिष्ट्य, अर्थनिष्पत्ति, उदाहरण-प्रत्युदाहरण और सारसंक्षेप के अतिरिक्त प्रत्येक धातु के दसों लकारों की रूपमाला सिद्धिसहित दिखाई गई है। वैयाकरणनिकाय में सैंकड़ों वर्षों से चली आ रही अनेक भ्रान्तियों का सयुक्तिक निराकरण किया गया है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों के प्रवेश के लिये यत्र-तत्र अनेक भाषावैज्ञानिक नोट्स भी दिये हैं। चार सौ से अधिक सार्थ उपसर्गयोग तथा उनके लिये विशाल संस्कृतसाहित्य से चुने हुए एक सहस्र से अधिक उदाहरणों का अपूर्व संग्रह प्रस्तुत किया गया है। लगभग डेढ़ हज़ार रूपों की ससूत्र सिद्धि और एक सौ के करीब शास्त्रार्थ और शङ्का-समाधान

इस में दिये गये हैं। अनुवादादि के सौकर्य के लिये छात्रोपयोगी णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अनेक शतक और संग्रह भी अर्थसहित दिये गये हैं। जैसे नानाविध लौकिक उदाहरणों द्वारा प्रक्रियाओं को इस में समझाया गया है वैसे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस से प्रक्रियाओं का रहस्य विद्यार्थियों को हस्तामलकवत् स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। अन्त में अनुसन्धानोपयोगी छः प्रकार के परिशिष्ट दिये गये हैं। ग्रन्थ का मुद्रण आधुनिक बढ़िया मैप्लीथो कागज़ पर अत्यन्त शुद्ध वा सुन्दर ढंग से पांच प्रकार के टाइपों में किया गया है। सुन्दर, बढ़िया, सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द तथा पक्की अंग्रेज़ी सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है। यह ग्रन्थ भी भारत सरकार से सम्मानित हो चुका है। यह भाग २३ × ३६ ÷ १६ आकार के ७५० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मूल्य केवल एक सौ रुपये।

इस भाग के विषय में श्री पं० चारुदेव जी शास्त्री पाणिनीय लिखते हैं—

"इतनी विस्तृत व्याख्या आज तक कभी नहीं हुई। यह अद्वितीय ग्रन्थ है। यह व्याख्या न केवल बालकों अपितु अध्यापकों के लिये भी उपयोगी है। शब्दसिद्धि सर्वत्र स्फटिकवत् स्फुट और हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष, परिपूर्ण और असन्दिग्ध है कि इस के ग्रहण के लिये अध्यापक की अपेक्षा नहीं रहती। कौमुदीस्थ प्रत्येक धातु की अविकलरूपेण सूत्राद्युपन्यासपूर्वक सविस्तर सिद्धि दी गई है। व्याख्यांश में भी यह कृति अत्यन्त उपकारक है। स्थान-स्थान पर धात्वर्थप्रदर्शन के लिये साहित्य से उद्धरण दिये गये हैं। धातूपसर्गयोग को भी बहुत सुन्दर काव्यनाटकों से उद्धृत उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। यह इस कृति की अपूर्वता है। इस व्याख्या के प्रणयन में शास्त्री जी ने अथाह प्रयत्न किया है। महाभाष्य, न्यास, पदमञ्जरी आदि का वर्षों तक अवगाहन करके उन्होंने यह व्याख्या लिखी है—।"

इस भाग के विषय में दिल्ली का **नवभारत टाइम्स** लिखता है—

"संस्कृत व्याकरण के अध्ययन में कौमुदी ग्रन्थों का अपना स्थान है। प्रायः लघुकौमुदी से ही व्याकरण का आरम्भ किया जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ का समझना आसान नहीं है। छात्रों के लिये यह ग्रन्थ वज्र के समान कठोर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीभीमसेनशास्त्री ने इस की हिन्दी व्याख्या की है। व्याख्याकार राजधानी के सुप्रसिद्ध वैयाकरण हैं। इस व्याख्या को देखकर हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी व्याख्या लघु तो क्या, सिद्धान्तकौमुदी की भी नहीं प्रकाशित हुई। इस व्याख्या का प्रथमभाग आज से बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। तब इसका भारी स्वागत हुआ था। जनता को उस के उत्तरार्द्ध भाग की व्याख्या की तभी से उत्कट लालसा रही है। लेखक ने अब इसे प्रकाशित कर जहां छात्रों का उपकार किया है, वहां शिक्षकों, प्राध्यापकों को भी उपकृत किया है। इस में लेखक का गहन अध्ययन, कठोर परिश्रम तथा विद्वत्ता स्थान-स्थान पर प्रकट होते हैं। परन्तु छात्रोपयोगी किसी भी विषय का विवेचन छोड़ा नहीं गया। यह इस की बड़ी भारी विशेषता है। इस भाग में तिङन्तप्रकरण (दशगण तथा एकादश प्रक्रियाओं) का अत्यन्त विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह प्रक-

रण धातुसम्बन्धी होने से व्याकरण का प्राण है। इस में प्रत्येक धातु के दस लकारों की ससूत्र प्रक्रिया साध कर उन की सारी रूपमाला भी दी गई है। इससे विद्यार्थियों को धातुरूपावलियों की आवश्यकता नहीं रहती। छः सौ के करीब टिप्पणियां तथा साढ़े चार सौ से अधिक उपसर्गयोग इस ग्रन्थ की अपनी अपूर्व विशेषता है। इन के लिये व्याख्याकार ने महान् श्रम कर विपुल संस्कृत-साहित्य से जो डेढ़ हज़ार के करीब अत्यन्त सुन्दर संस्कृत की सूक्तियों का चयन किया है। वह स्तुत्य है, सैंकड़ों उपयोगी शङ्का समाधान तथा णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अर्थसहित कई शतक विद्यार्थियों के लिए निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होंगे। इस ग्रन्थ की उत्कृष्टता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अकेली भूधातु पर ही विद्वान् व्याख्याकार ने ९० पृष्ठों में अपनी व्याख्या पूर्ण की है।

संक्षेप में इस व्याख्या को लघुकौमुदी का महाभाष्य कह सकते हैं। यह ग्रन्थ न केवल छात्रों, परीक्षार्थियों तथा उपाध्यायों, अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा बल्कि अनुसंधान में रुचि रखने वालों के लिए भी परमोपयोगी एवं सहायक सिद्ध होगा। इसे पढ़ने से जहां व्याकरण जैसे शुष्क विषय में सरसता पैदा होती है वहां अनुसंधान कार्य को भी बढ़ावा मिलता है। हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ स्वागत-योग्य हैं।"

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या

(तृतीय भाग—कृदन्त एवं कारकप्रकरण)

भैमीव्याख्या के इस तृतीय भाग में कृदन्त और कारक प्रकरणों का विस्तृत वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सुप्रसिद्ध कृत्प्रत्ययों के लिये कई विशाल शब्दसूचियां अर्थ तथा ससूत्रटिप्पणों के साथ बड़े यत्न से गुम्फित की गई हैं, जिन में अढ़ाई हज़ार से अधिक शब्दों का अपूर्व संग्रह है। प्रायः प्रत्येक प्रत्यय पर संस्कृत-साहित्य में से अनेक सुन्दर सुभाषितों या सूक्तियों का संकलन किया गया है। कारकप्रकरण लघुकौमुदी में केवल सोलह सूत्रों तक ही सीमित है जो स्पष्टतः बहुत अपर्याप्त है। भैमीव्याख्या में इन सोलह सूत्रों की विस्तृत व्याख्या करते हुए अन्त में अत्यन्त उपयोगी लगभग पचास अन्य सूत्र-वार्त्तिकों की भी सोदाहरण सरल व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार कुल मिलाकर कारकप्रकरण ५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। अनेक प्रकार के उपयोगी परिशिष्टों सहित यह भाग लगभग चार सौ पृष्ठों में समाश्रित हुआ है। पूर्ववत् अङ्ग्रेजी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड आकर्षक कपड़े की सम्पूर्ण जिल्द। मूल्य केवल पचास रु०।

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या (चतुर्थभाग)

इस भाग में समास, तद्धित तथा स्त्रीप्रत्यय प्रकरणों की नवीन शैली से विस्तृत व्याख्या की गई है। यह भाग प्रेस में है, शीघ्र उपलब्ध होगा।

वैयाकरण-भूषण-सार-भैमीभाष्योपेत

(धात्वर्थनिर्णयान्त)

वैयाकरण-भूषणसार वैयाकरणनिकाय में लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थ है। व्याकरण के दार्शनिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये इस का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत एव एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री आदि व्याकरण की उच्च परीक्षाओं मे यह पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में कोई भी सरल व्याख्या आज तक नहीं निकली––हिन्दी तो क्या अन्य भी किसी प्रांतीय वा विदेशी भाषा में इस का अनुवाद तक उपलब्ध नहीं। विश्वविद्यालयों के छात्र तथा उच्च कक्षाओं में व्याकरण विषय को लेने वाले विद्यार्थी प्रायः सब इस ग्रन्थ से त्रस्त थे। परन्तु अब इस के विस्तृत आलोचनात्मक सरल हिन्दीभाष्य के प्रकाशित हो जाने से उन का भय जाता रहा। छात्रों वा अध्यापकों के लिये यह ग्रन्थ समानरूपेण उपयोगी है। इस ग्रन्थ के गूढ़ आशयों को जगह-जगह वक्तव्यों वा फुटनोटों में भाष्यकार ने भली भांति व्यक्त किया है। भैमीभाष्यकार व्याकरणक्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं, तथा वर्षों से व्याकरण के पठनपाठन का अनुभव रखते हैं। अतः छात्रों वा अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी समस्या को भी उन्होंने खोलकर रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जगह-जगह वैयाकरणों और मीमांसकों के सिद्धान्त को खोलकर तुलनात्मकरीत्या प्रतिपादित किया गया है। इस भाष्य की महत्ता इसी से व्यक्त है कि अकेली दूसरी कारिका पर ही विद्वान् भाष्यकार ने लगभग साठ पृष्ठों में अपना भाष्य समाप्त किया है। विषय को समझाने के लिये अनेक चार्ट दिये गये हैं। जैसे––वैयाकरणों और नैयायिकों का बोधविषयक चार्ट, धातु की साध्यावस्था और सिद्धावस्था का चार्ट, प्रसज्य और पर्युदास प्रतिषेध का चार्ट आदि। पूर्वपीठिका में भाष्यकार ने व्याकरण के दर्शनशास्त्र का विस्तृत क्रमबद्ध इतिहास देकर मानों सुवर्ण में सुगन्ध का काम किया है। ग्रन्थ के अन्त में अनुसन्धानप्रेमी छात्रों के लिये सात परिशिष्ट तथा आदि में विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी गई है जो अनुसन्धान-क्षेत्र में अत्यन्त काम की वस्तु हैं। वस्तुतः व्याकरण में एक अभाव की पूर्ति भाष्यकार ने की है। इस भाष्य की प्रशंसा में देश-विदेश के विद्वानों के प्रशंसा-पत्र धड़ाधड़ आ रहे हैं। **भारत सरकार द्वारा यह ग्रन्थ सम्मानित हो चुका है।** ग्रन्थ का मुद्रण बढ़िया मैप्लीथो कागज़ पर अत्यन्त शुद्ध वा सुन्दर ढंग से छः प्रकार के टाइपों में किया गया है। सुन्दर बढ़िया सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द तथा पक्की अंग्रेज़ी सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है। मूल्य तीस रुपये केवल।

"नवभारत टाइम्स" इस ग्रन्थ की आलोचना करता हुआ लिखता है —

"ग्रन्थ के भावों और गूढ़ आशयों को व्यक्त करने वाले पदे-पदे वक्तव्यों और पादटिप्पणों से लेखक का गम्भीर अध्ययन वा श्रम स्पष्ट झलकता है। पञ्चमी और त्रयोदशी कारिकाओं पर अकर्मक और सकर्मक धातुओं के लक्षण का आशय जैसा इस

भाष्य में स्पष्ट किया गया है अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस तरह के अन्य भी शतशः स्थल उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शास्त्रीजी की शैली अध्येताओं वा पाठकों के मन में उत्पन्न होने वाली सम्भावित शङ्काओं को बटोर-बटोर कर ध्वस्त करने की क्षमता रखती है। द्वितीय कारिका की व्याख्या का लगभग सत्तर पृष्ठों में समाप्त होना इस का ज्वलन्त प्रमाण है। हिन्दी में इस प्रकार के यत्न स्तुत्य हैं।"

बम्बई विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग के अध्यक्ष डाक्टर त्र्यम्बक गोविन्द माईणकर लिखते हैं—

"Students of Grammar will always remain indebted to Bhim Sen Shastriji for his very valuable help available in his commentary. I wish Bhim Sen Shastriji writes similar commentaries on other works in the field of Grammar and renders service both to the subject of his love and to the world of students and scholars. I once again congratulate him."

अर्थात् श्रीभीमसेन शास्त्री के इस बहुमूल्य व्याख्यान को पाकर व्याकरण के विद्यार्थी उन के सदा ऋणी रहेंगे। मैं चाहता हूं कि शास्त्री जी इस प्रकार की व्याख्यायें व्याकरण के अन्य ग्रन्थों पर भी प्रकाशित करते हुए विद्यार्थियों तथा अनुसन्धानप्रेमियों का उपकार करेंगे। मैं शास्त्री जी को उन के इस कार्य के लिये पुनः बधाई देता हूं।

डा० सत्यव्रत जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, प्रोफ़ेसर एवं संस्कृतविभागाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार ग्रन्थ के क्लिष्ट शब्दावली में लिखा होने के कारण विद्यार्थियों को इसे समझने में बहुत कठिनाई हो रही थी। इसी कठिनाई को दूर करने की सदिच्छा से प्रेरित हो सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं० भीमसेन शास्त्री ने हिन्दी में इस की सरल और सुबोध व्याख्या लिखी है। शास्त्री जी का व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अति गहन है। विषय स्पष्टातिस्पष्ट हो, इस विषय में सतत उद्योगशील रहे हैं। इस का यह परिणाम है कि उन की व्याख्या में गहराई भी है और विशदता भी। यह व्याख्या विद्वानों के लिए एवं विद्यार्थियों के लिए एक समान उपयोगी है।"

श्री पण्डित कुबेरदत्तजी शास्त्री व्याकरणाचार्य प्रिंसिपल श्री राधाकृष्णसंस्कृत-महाविद्यालय, खुर्जा लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार पर विशद भैमीभाष्य को पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा परिश्रम हिन्दी में प्रथम बार हुआ है। यह भाष्य न केवल विद्यार्थियों वा परीक्षार्थियों के लिये अपितु अध्यापकों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। व्याख्यान की शैली नितान्त हृदयहारिणी तथा स्तुत्य है। व्याकरण के अन्य दार्शनिक ग्रन्थों की भी इसी शैली में उन्हें व्याख्या करनी चाहिये। मैं शास्त्री जी को उनकी सरल कृति पर बधाई देता हूं।"

डा० रामचन्द्रजी द्विवेदी प्रोफेसर एवं संस्कृतविभागाध्यक्ष, जयपुर यूनिवर्सिटी अपने एक पत्र में लिखते हैं—

"I gratefully acknowledge receipt of a copy of the Vaiyakarana Bhusana-Sara. Your knowledge of the grammar is profound aud subtle and the world of scholars expect many such good works from your pen."

गुरुकुल झज्झर के आचार्य तपोमूर्ति **श्रीभगवान्देवजी आर्य** लिखते हैं—

"आप का परिश्रम स्तुत्य है। छात्रों के लिए इस ग्रन्थ का आर्यभाषानुवाद कर के आप ने महान् उपकार किया है। आप को अनेकशः बधाइयां।"

बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A. Ph. D. साहित्यरत्न]

श्री भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी पर श्रीवासुदेवदीक्षित की बनाई हुई बालमनोरमा टीका सुप्रसिद्ध छात्रोपयोगी ग्रन्थ है। पिछली अर्धशताब्दी में इस के कई संस्करण मद्रास, लाहौर, बनारस और दिल्ली आदि महानगरों में अनेक दिग्गज विद्वानों के तत्त्वावधान में प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि इन स्वनामधन्य विद्वान् सम्पादकों ने इस ग्रन्थ के साथ ज़रा भी न्याय नहीं किया, इसे पढ़ने तक का भी कष्ट नहीं किया। यही कारण है कि इस में अनेक हास्यास्पद और घिनौनी अशुद्धियां दृष्टिगोचर होती हैं। इस से पठन-पाठन में बहुत विघ्न उपस्थित होता है। इस शोधपूर्ण लघु निबन्ध में बालमनोरमाकार की कुछ सुप्रसिद्ध भ्रान्तियों की सयुक्तिक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आप इस शोधपत्र को पढ़ कर मनोरञ्जन के साथ-साथ प्रक्रियामार्ग में अन्धानुकरण न करने तथा सदैव सजग रहने की भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इस में स्थान-स्थान पर विद्वानों की प्रमादपूर्ण सम्पादन कला पर भी अनेक चुभती चुटकियाँ ली गई हैं। यह निबन्ध प्रकाशकों, सम्पादकों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों सब की आंखों को खोलने वाला एक समान उपयोगी है। हिन्दी में इस प्रकार का प्रयत्न पहली बार किया गया है। अनेक टाइपों में मैप्लीथो कागज़ पर छपे सुन्दर शोधपत्र का मूल्य—पांच रुपये केवल।

प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A. Ph. D. साहित्यरत्न]

शोधपूर्ण इस निबन्ध में 'अइउण्' आदि प्रत्याहारसूत्रों के निर्माता के विषय में खूब ऊहापोहपूर्वक विस्तृत विचार व्यक्त किये गये हैं। ये सूत्र पाणिनि की स्वोपज्ञ रचना हैं या किसी अन्य मनीषी की ? इस विषय पर महाभाष्य, काशिकावृत्ति, भर्तृहरिकृत महाभाष्यदीपिका, कैयटकृत प्रदीप आदि प्रामाणिक ग्रन्थों के दरजनों प्रमाणों के आलोक में पहली बार नवीनतम विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इन के शिवसूत्र या माहेश्वरसूत्र कहलाने का भी क्रमिक इतिहास पूर्णतया दे दिया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, हेम-

चन्द्रशब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दानुशासन, सारस्वत, मुग्धबोध, संक्षिप्तसार तथा हरिनामामृत —इन ग्यारह पाणिनीतरव्याकरणों के प्रत्याहारसूत्रों को उद्धृत कर उन का पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस से प्रत्याहारसूत्रों के विषय में गत अढ़ाई हजार वर्षों के मध्य भारतीय व्याकरणविदों के विचारों में आये क्रमिक परिवर्तनों पर प्रकाश पड़ता है। इस के अन्त में बहुचर्चित नन्दिकेश्वरकाशिका ग्रन्थ भी अविकल दे दिया गया है, जिस से पाठकों को इस विषय का पूरा-पूरा विवरण मिल सके। पक्की अंग्रेजी सिलाई तथा आकर्षक जिल्द से यह ग्रन्थ चमत्कृत है। मूल्य —पच्चीस रुपये केवल।

अव्ययप्रकरणम्

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A. Ph. D. साहित्यरत्न]

लघुसिद्धान्तकौमुदी का अव्ययप्रकरण सुविस्तृत भैमीव्याख्यासहित पृथक् छपवाया गया है। इस में विशाल संस्कृतसाहित्यगत लगभग सवा पांच सौ अव्ययों का सोदाहरण साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अव्यय पर वैदिक वा लौकिक संस्कृतसाहित्य से अनेक सुन्दर सुभाषितों वा सूक्तियों का संकलन किया गया है। कठिन सूक्तियों के अर्थ भी साथ-साथ दे दिये गये हैं। प्रत्येक उद्धृत वचन का यथासम्भव उद्धरणस्थल भी निर्दिष्ट किया गया है। सैंकड़ों टिप्पणियों तथा फुटनोटों से यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। इस के निर्माण में सैंकड़ों ग्रन्थों से सहायता ली गई है। आज तक इतना शोधपूर्ण परिश्रम इस प्रकरण पर पहली बार देखने में आया है। साहित्यप्रेमी विद्यार्थियों तथा शोध में लगे जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ विशेष उपादेय है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थगत सब अव्ययों की अकारादिक्रम से अनुक्रमणी भी दे दी गई है। ताकि अव्ययों को ढूंढने में असुविधा न हो। इस ग्रन्थ में अव्ययों के अर्थज्ञान के साथ साथ सुभाषितों वा सूक्तियों का व्यवहारोपयोगी एक बृहत्संग्रह भी अनायास प्राप्त हो जाता है। सुन्दर पक्की अंग्रेज़ी सिलाई, आकर्षक जिल्द। मूल्य—पच्चीस रुपये।

न्यास-पर्यालोचन

[A CRITICAL STUDY OF JINENDRABUDDHI'S NYASA]

यह ग्रन्थ काशिका की प्राचीन सर्वप्रथम व्याख्या काशिकाविवरणपञ्चिका अपरनाम न्यास पर लिखा गया बृहत्काय शोधप्रबन्ध है, जिसे **दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा** पी० एच्-डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत किया गया है। यह शोधप्रबन्ध वैद्य भीमसेन शास्त्री द्वारा कई वर्षों के निरन्तर अध्ययन स्वरूप बड़े परिश्रम से लिखा गया है। इसमें कई प्रचलित धारणाओं का खुल कर विरोध किया गया है। जैसे न्यासकार को अब तक बौद्ध समझा जाता है परन्तु इस में उसे पूर्णतया वैदिकधर्मी सिद्ध किया गया है। यह शोधप्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में न्यास और न्यासकार का सामान्य परिचय देते हुए न्यासकार का काल, निवास-स्थान,

न्यास का वैशिष्ट्य, न्यास की प्रसन्नपदा प्रवाहपूर्ण शैली तथा न्यास और पदमञ्जरी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में 'न्यास के ऋणी उत्तरवर्त्ती वैयाकरण' नामक अत्यन्त शोधपूर्ण नवीन विषय प्रस्तुत किया गया है। इस में केवल पाणिनीय वैयाकरणों को ही नहीं लिया गया अपितु पाणिनीतर चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण, हैमशब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दानुशासन, संक्षिप्तसार, मुग्धबोध तथा सारस्वत इन दस प्रमुख व्याकरणों को भी सम्मिलित किया गया है। तृतीयाध्याय में 'उत्तरवर्त्ती वैयाकरणों द्वारा न्यास का खण्डन' नामक अपूर्व विषय प्रतिपादित है। इस में उत्तरवत्ती वैयाकरणों द्वारा की गई न्यासकार की आलोचनाओं पर कारणनिर्देशपूर्वक युक्तायुक्तरीत्या खुल कर विचार उपस्थित किये गये हैं। चतुर्थ अध्याय में 'न्यास की सहायता से काशिका का पाठसंशोधन' नामक महत्वपूर्ण विषय का वर्णन है। इसमें काशिका ग्रन्थ की अद्यत्वे मान्य सम्पादकों (?) द्वारा हो रही दुर्दशा का विशद प्रतिपादन करते हुए उसके अनेक अशुद्ध पाठों का न्यास के आलोक में सहेतुक शुद्धीकरण प्रस्तुत किया गया है। पञ्चम अध्याय में न्यासकार की भ्रान्तियों तथा न्यास के एक-सौ भ्रष्ट पाठों का विस्तृत लेखा-जोखा उपस्थित किया गया है। छठा अध्याय अनेक नवीन बातों से उपबृंहित उपसंहारात्मक है। व्याकरण का यह ग्रन्थ पाणिनीय वा पाणिनीतर व्याकरण के क्षेत्र में अपने ढंग का सर्वप्रथम किया गया अनूठा ज्ञानवर्धक प्रयास है। यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालय के लिये संग्राह्य है तथा व्याकरणशास्त्र में शोधकार्य करने वाले शोधच्छात्रों के लिये नितान्त उपयोगी है। सुन्दर मैप्लीथो कागज़, पक्की अंग्रेजी सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड, आकर्षक मजबूत जिल्द से सुशोभित ग्रन्थ का मूल्य—केवल एक सौ रुपये।

—विशेष सूचना—

संस्कृत के प्रचार एवं प्रसार के लिये भैमी प्रकाशन द्वारा एक विशेष योजना आरम्भ की गई है, जिस के अन्तर्गत संस्कृत के प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को सूचीपत्र में उल्लिखित ये पुस्तकें बहुत अधिक रियायती मूल्य पर दी जाती हैं। इस सुविधा से लाभ उठाने के लिये निम्न पते पर जवाबी कार्ड सहित पत्र लिखें॥

प्राप्तिस्थान—

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट,

दिल्ली-११०००६

BHAIMI PRAKASHAN

(1) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA PART-I

(Revised and Inlarged II Edition)

Bhaimi Vyakhya of Shri Bhim Sen Shastri is unique and first of its kind published in Hindi, in its detailed and scientific exposition of the Laghu Siddhant Kaumudi. The fact that part-I (पूर्वार्धं) runs into more than 600 pages, speaks for the painstaking nature, depth of learning and experience of the author. He has left no stone unturned to make the subject as simple and easy to grasp as possible for the students and to achieve this aim, he has combined traditional method with the modern and scientific method of teaching and analysis.

The author has taken great pains to bring home to students the meaning of the Sutras without the help of Vrittis. At the end of each section have been appended excercises, prepared with great care and caution to remove the doubts of students. Declensions of all the words mentioned in the L. S. K. have been given in the Bhaimi Vyakhya. This does away with the need to have a separate Roopmala. The author has also given a list of about 2000 words with meanings. These include many rare and uncommon words. This is a real help in translation. The unique feature of the publication is the section on Avyaya (अव्यय), which has been acclaimed by eminent scholars and erudite pandits as an original contribution to the subject. The several indexes at the end are very useful.

The language of the work is very simple and lucid. The difficult and knotty points have been handled deftly. On controversial subjects, the views of all the well-known authorities have been quoted. The author is not a blind follower of tradition in matter of interpretation and meaning of Sutras. Wherever he differs, he gives convincing arguments in support of his own view, which gives a stamp of his deep study, research and vast teaching experienee. Bhaimi Vyakhya in short is a self tutor and is of immense help to teachers and research scholars. Price : Rs 100/- only.

(2) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA PART-II

Part-II of Bhaimi Vyakhya on Laghu Siddhant Kaumudi deals with the तिङन्त section which is known as the backbone of Sanskrit grammar. The work is an original commentary in the traditional style, which combines the modern scientific technique of exposition and comparative analysis. The work is unique in the प्रक्रिया portion. The author has given detailed प्रक्रिया of about 1500 verbal forms besides conjugations of more than 300 verbs in all the ten tenses and moods. The use and meaning of different उपसर्ग's in combination with verbs has been illustrated in about 1000 quotations taken from the famous Sanskrit works. For the benefit of students, exercises have been given at the end of each sub-section. The causal, desiderative, intensive and denominative verbal forms have been ably explained. One hundred illustrations of each of these forms have been given with meaning. The inclusion of well-known controversies, with the view point of each side and author's own, is a special feature of the work. In many places, the author has offered new solutions to difficult problems left un-attended even by Varadaraja himself. At the end of the publication have been appended six indexes, of which special mention may be made of no 5.

This voluminous work running into 750 pages has been priced Rs. 100/- only.

(3) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI– BHAIMI VYAKHYA PART-III

Like the first two parts this part of Laghu-Siddhanta-Kaumudi Bhaimi Vyakhya too deals in great details with कृदन्त and कारक chapters only. The section on Karkas has been elaborated by inclusion of a sufficient number of new Sutras, not found in the original L.S.K. of Varadraja. As in the first two parts exercises have been added at the end of each sub-section. Thus it contains excellent material for research scholors. Price : Rs. 50/- only.

(4) LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA (Part-IV)

In this last part of Bhaimi Vyakhya तद्धित, समास and स्त्रीप्रत्यय chapters have been elaborated in great length for the first time. This part is being readied for the press.

(5) VAIYAKARAN BHUSHAN SARA

Vaiyakaran Bhushan Sara of Kaundbhatt is an important treatise of Sanskrit grammar and occupies a special position for its exposition of the principles of philosophy of grammar. This has been prescribed as a text-book for M.A., Acharya, Shastri etc. degrees. The work is quite a difficult one and at places incomprehensible for even the brilliant students. This is evident from the fact that till recently no translation of V. B. S. in English, Hindi or any other language of country (except in Sanskrit) was available. The Bhaimi Bhashya of Shri Bhim Sen Shastri has filled this long felt need. Bhim Sen Shastri is an eminent Sanskrit scholar and grammar is dear to his heart. He has been teaching Sanskrit grammar for more than 4 decades and through his researches has carved out a place for himself in the field. This is borne out by the commentary on the धात्वर्थ-निर्णय of V.B.S. This commentary has won him laurels from within and outside the country and has been given recognition by the Government of India too. The explanation of the knotty points in simple and flowing language are remarkable. His style of raising the doubt and putting forth its solution is commendable. Particularly praiseworthy are elucidations of Karikas 2, 5 and 13. At the end of the book, the author has given indexes which are very useful for teachers, students and reasearch scholars. Dr. satya Vrat Shastri, Professor and Head of Sanskrit Department, Delhi University has contributed a scholarly introduction.

The book has been printed very nicely on maplitho paper and is clothbound. This makes it very useful, particularly for libraries. It is priced only Rs. 30/- which is considered on the low side keeping in view the prices of research work of comparative merit.

(6) A STUDY OF NYASA

Recently the famous research work of Shastriji under the caption 'Nyasa Paryalochana' (in Hindi) has been published. This is an original contribution towards the study of 'Kashika-Vivarana-Panjika' also known as 'Nyasa' the earliest known commentary on 'Kashika' and it has been accepted for the award of Ph.D. degree by the University of Delhi. Infact, it is the result of Shastriji's many years' continuous study and loving labour. Several current notions have been boldly contradicted. For example, Nyasakara is still believed to be a Buddhist, but in this thesis several evidences have been put forward to show that he was a follower of Vedic religion.

The thesis is divided into six chapters. The first chapter, while giving general introduction to the Nyasa and its author, deals with the latter's time and place, the salient features of Nyasa, its elegant and fluent style and a comparative study of Nyasa and Hardatta's Padamanjari.

The second chapter deals with entirely a new research subject 'Later Grammarians, indebtedness to Nyasa'. This discusses not only Paninian grammars but also includes the ten main non-Paninian grammars, viz. Chandra, Jainendra, Katantra, Sakatayana, Saraswatikanthabharan, Hemchandra's Sabdanusasana, Malayagiri-sabdanusasana, Sankshiptasara, Mugdhabodha & Sarasvata.

The third chapter entitled 'Refutation of Nyasa by Later Grammarians' discusses another topic not touched upon earlier by anyone. Here the author examines the later grammarians' criticisms of Nyasakara by presenting in elaborated details the reasons for their soundness or otherwise.

The forth chapter deals with an important issue 'Correction of Kasika-texts in the context of Nyasa'. The author has pointed out at length the grave mistakes committed by the modern eminent scholars in editing Kasika and has offered rectification of several of its incorrect texts with justifications in the context of Nyasa.

The fifth chapter gives a detailed account of the misconceptions of Nyasakara and one hundred incorrect readings.

The sixth chapter gives the conclusion adding several new facts. In the field of Paninian and non-Paninian grammars this work is most reliable and uniquely informative first attempt of its

own kind. Needless to say, this publication is a must for every library and is exceedingly useful for research scholars in the field of Sanskrit grammar. The book is printed on fine maplitho paper and is clothbound costing Rs. 100/- only. (PP. 20+432)

(7) BALMANORMA BHRANTI-DIGDARSHAN

This research paper in Hindi by Shri Bhim Sen Shastri points out the glaring mistakes and contradictions, which are eyesores to both students and teachers, in the various editions of Balmanorama edited by eminent scholars from different centres in the country. The authur through convincing arguments has established that these learned scholars have not only not taken any pains to edit the work carefully but have blindly followed each other, not noticing even the self-evident errors. The paper is priced Rs. 5/- only.

(8) PRATYAHAR SUTROAN KA NIRMATA KAUN ?
(Who is the author of Pratyahar aphorisms ?)

It is for the first time the problem of the authorship of the Pratyahar Sutras has been analysed in such depth. The learned author has furnished many convincing arguments and produced numerous documentary evidence in support of his theory. The essay is an eye-opener to those who are easily let astray by blind faith. The paper is priced Rs. 25/- only.

(9) AVYAYA-PRAKARANAM

The unique feature of Laghu Siddhanta Kaumudi Bhaimi-Vyakhya is the section on अव्ययs, which has been acclaimed by eminent scholars and erudite Pandits as an original contribution to the subject. The author has given about 500 Avyayas with its meanings and usages from the vast Sanskrit Literature. At the end of this book alphabetical list of अव्ययs has been added. For the convenience of the readers this chapter has been published separately. Price : Rs. 25/- only.

These books can be had of—

BHAIMI PRAKASHAN

537, Lajpat Rai Market, DELHI-110006